इकाई - 1

संस्कृत गद्य का एवं उद्भव विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

हम एम० ए० उत्तरार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र गद्य एवं काव्य (MASA-0५) के अन्तर्गत संस्कृत गद्य का उद्भव एवं विकास नामक इकाई का अध्ययन करने जा रहे है। हम यहाँ संस्कृत गद्य के उद्भव एवं विकास को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित तथ्यों का अवबोध कर सकेगें –

- संस्कृत वाङ्मय में गद्य विधा का क्या स्थान है ?
- वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, दार्शनिक, शिलालेख, शास्त्रीय इत्यादि से किस प्रकार गद्य उद्भूत हुआ है ?
- संस्कृत गद्य की विधाद्वय कथा एवं आख्यायिका में क्या भेद है ?संस्कृत गद्य के तीन सम्राट् सुबन्धु बाण तथा दण्डी ने किस प्रकार गद्य को विकसित किया है ?
- उक्त गद्य त्रयी के अतिरिक्त अन्य लेखकों का संस्कृत गय के विकास में क्या योगदान रहा है ?

1.1 प्रस्तावना

गद्यकाव्य में 'काव्य' के सभी रस, अलंकार, गुण आदि विषय रहते हैं, किन्तु पद्यकाव्य के सदृश इसमें छन्द का बंधन नहीं रहता है। यह सच है कि किसी भी साहित्य का प्रारम्भ पद्य से होता है। चूँकि पद्य में संगीत का तव सहज रूप से लिपटा रहता है, अत: मनुष्य नैसर्गिक रूप से उसकी ओर आकृष्ट होता है। गेयतत्व की ओर सहज आकर्षण होने के कारण मानवीय चेतना के परिवेश में आवेष्टित रहती है।

'गद्य' में विचार के तत्व प्रबल होते हैं, जबकि 'पद्य' में भावना का प्राधान्य होता है। संस्कृत साहित्य 'वैदिक' गीतों' के रूप में ही प्रस्फुटित हुआ। यह पद्य - बहुल साहित्य है। संस्कृत में शास्त्रीय ग्रंथो की भी रचना पद्य में ही हुई है। इतना होने पर भी संस्कृत में गद्य का प्रचुर साहित्य विद्यमान है तथा इसका जितना भी अंश गद्य में लिखा गया है, उसकी अपनी विशिष्टता है।
संस्कृत गद्य - लेखन की परम्परा वैदिक संहिताओं की तरह ही प्राचीन है। कृष्ण यजुर्वेद में गद्य का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है। गद्य के कारण ही वैदिक संहिता में 'कृष्ण यजुर्वेद' का स्वतंत्र स्थान है। इसकी तैतरीय संहिता गद्य का प्राचीनतम रूप उपस्थित करती है। अर्थर्ववेद का छठा भाग गद्य - रूप में है। परवर्ती साहित्य में ब्राम्हणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में गद्य का व्यावहारिक रूप उपलब्ध होने लगता है, जो वैदिक गद्य की परम्परा का प्रौढ एवं संवर्धनशील रूप प्रस्तुत करता है।
कालान्तर में तत्वज्ञान, व्याकरण, विज्ञान-विषयक ग्रन्थ, ज्योतिष तथा टिका-ग्रंथो में गद्य का व्यव्हारोपयोगी प्रौढ रूप सामने आया। इन ग्रंथो का गद्य वैदिक साहित्य के गफ्द्य का विकसित रूप प्रस्तुत करता है तथा इस स्थिति में गद्य जीवन के निकट फलने- फूलने लगता है। कथा-काव्य, आख्यायिका, चम्पू काव्य एवं काव्यशास्त्रीय ग्रंथो में गद्य के साहित्यिक, सहज एवं अलंकृत रूप से दर्शन होते हैं और इनका संस्कृत गद्य अपने परिनिष्ठित रूप में पूर्णत: समृद्ध होता है।
संस्कृत में गद्य-काव्यों की विशाल परम्परा रही है, किन्तु सम्प्रति अनेक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। पंतजली के महाभाष्य में वासवदत्ता, भैमरथी एवं सुमनोत्तारा प्रभूति गद्य-काव्यों के उल्लेख होते हैं –
अधिकृत्य कृते ग्रन्थ 'बहुलं लुग्वक्त्वय:'
वासवद्ता सुमनोत्तारा ,। न च भवति। भैमरथी।" (4.3.87)
पतंजली के पूर्व प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन भ आख्यायिकाओं से परिचित दिखायी पड़ते हैं - 'लुबाख्यायी काम्यो बहुलम, आख्याना आख्यायिकेतिहास-पुराणेभ्याश्च।

1.2 संस्कृत गद्य की विशेषताएँ

शास्त्रीय ग्रंथो के माध्यम से संस्कृत आचार्यों ने सूत्रात्मक शैली के गद्य का निर्माण किया है। लाघव या लघुता संस्कृत गद्य की सर्वाधिक विशेषता है, जिसमें पुरे वाक्य में व्यक्त किये गए विचार को एक ही पद में रखा जाता है। संस्कृत भाषा में समास- बहुल गद्य का रूप प्राप्त होता है। वस्तुत: 'समास' संस्कृत भाषा का प्राण है, जिसके कारण गद्य में भावग्राहिता, गाढ़बंधता एवं प्रभान्विति आती है।
'ओज' गुण संस्कृत गद्य की अन्य विशिष्टता है। पदों का साभिप्राय होना ओज गुण के अन्तर्गत आता है। आचार्य दण्डी के अनुसार समास का बाहुल्य ही ओज और ओज गद्य का जीवन है –
'ओज: समासभूयस्वत्वमेतद् गद्यस्य जीवितम।'
संस्कृत गद्य के दो रूप होते हैं – (1) बोलचाल का सरल या सादा गद्य तथा (2) प्रौढ एवं अलंकृत गद्य। वैदिक साहित्य में बोलचाल का सरल गद्य प्राप्त होता है, पर लौकिक साहित्य में प्रौढ, अलंकृत गद्य होते हैं। श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण में ऐसे ही गद्य हैं।

1.3 संस्कृत-गद्य का उद्भव

वैदिक संहिता में संस्कृत गद्य का प्रारम्भिक रूप प्राप्त होता है। इस युग का गद्य सरल, सीधा एवं बोलचाल की भाषा का है, जिसमें छोटे-छोटे वाक्य तथा असमस्त पद प्रयुक्त होते हैं। उपमा एवं रूपक प्रभृति अलंकारों के समावेश से इसमें विशेष चारुता आ जाती है। जैसे-
"आ ब्रम्हान ब्राम्हणो ब्रम्हवर्चसी जायताम्। आराष्ट्रे राजन्य: शुर: इषव्यो - ऽतिव्याधि महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुवोढाऽनाड्वानाशु: सप्ति: पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णु रथेष्ठा सभेयो युवास्य यजमानस्य

वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो नः औषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्।" **(यजुर्वेद 2.22)**

कालक्रम में कुछ उतरकर अथर्ववेद का गद्य है। अथर्ववेद का छठा भाग गद्यात्मक ही है। समग्र ब्राह्मणों की रचना गद्यरूप में ही है। यज्ञों के वर्णनात्मक होने से इसका प्रयोग उचित ही है। आरण्यकों में भी गद्य की प्रचुरता है। उपनिषदों में प्राचीन उपनिषद् गद्यात्मक ही है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में गद्य का प्रयोग बहुत ही व्यापक, उदार तथा उदार रूप से हुआ है। लौकिक संस्कृत के ग्रन्थों में तदपेक्षया गद्य का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है।

शिलालेखों में संस्कृत गद्य का रूप अत्यंत पौध, अलंकृत तथा समास- बहुल है । रूद्रदामन का जूनागढ़ का शिलालेख तथा समुद्रगुप्त का प्रयाग का शिलालेख प्रौढ गद्य का रूप उपस्थित करता है। जैसे –

"प्रामणमानोन्मान स्वरगतिवर्णसारसत्वातिभिः परमलक्षणव्यंजननैरुपेतैनकान्त मुर्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेंद्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्त दाम्नो महा-क्षत्रपेण रूद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"(गिरनार का शिलालेख)

शास्त्रीय गद्य का भी अपना स्थान है । समस्त भारतीय दर्शन ग्रंथो का लेखन गद्य में ही हुआ है। यद्यपि कतिपय अपवाद भी हैं । इन ग्रंथो में लेखन का ध्यान भावाव्यक्ति एवं अर्थाभिव्यक्ति पर अधिक रहता है। शब्द शुष्क भले ही हों, पर उनमें अभिप्रेत अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्त होनी चाहिए। कुछ ऐसे दर्शनकार हैं, जिन्होंने अलंकृत एवं साहित्यक शैली के गद्य का व्यवहृत किये हैं।

पतंजली, शबर स्वामी, शंकराचार्य एवं जयंतभट्ट के ग्रंथो में शास्त्रीय गद्य चरम सीमा पर पहुँच गया है । इन्होने व्याकरण तथा दर्शन जैसे जटिल, गम्भीर एवं दुरह विषय का सरल, बोधगम्य और प्रांजल शैली में विवेचन किया है। पतंजली ने कथोपकथन की शैली में बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर महाभाष्य की रचना की । इनके वाक्य अत्यन्त छोटे तथा पद असमस्त हैं । ऐसा लगता है कि आचार्य सम्मुख बैठे छात्र वर्ग को व्याकरण पढ़ा रहा हैं –

"के पुनः कार्यभावानिवृत्तो तावत् तेशां वत्नः क्रियते । तद् यथा घटेन कार्यम् करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह-कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामति । न तद्वच्छव्दान् प्रयुयुक्षमाणु वैयाकरणकुलंगत्वाह-कुरु शब्दान प्रयोक्ष्य इति ।(पस्पशान्हिक) शवरस्वामी ने 'मीमांसा सूत्र' पर सरल भाषा में भाष्य लिखा और शंकराचार्य का 'वेदान्त भाष्य' का गद्य सारगर्भित, प्रौढ एवं प्रांजल है । चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनं माहुः । उच्यते- आचार्यःचोदितः करोमीति हि दृश्यते।

(शाबरभाष्य १/१/१)

-अस्यानर्थहेतोः प्रहाणाय सर्वे वेदान्ता आरम्भ्ते ।(ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य-उपोद्घात)

जयंतभट्ट ने 'न्याय मंजरी' नामक न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा । इन्होंनें न्याय जैसे जटिल विषय को सरस, व्यंग्य-युक्त तथा चटुल उक्तियों के द्वारा हृदयंगम बनाया है – नाममात्रवस्तुसंकीर्तनमद्देश्य। उद्दिष्टस्य लक्षणमुपपद्यते न वेति परीक्षा ।(न्यायमञ्जरी)

संस्कृत गद्यकाव्य लोककथाओं की वर्णात्मक सामग्री को लेकर आता है तथा उसकी ही मानवी व अति मानवी कथा रुढियों को अपनाता हैं, पर इसका ढाँचा अपना होता है, जो काव्य की देन है।

1.4 कथा एवं आख्यायिका

आख्यायिका का स्वरूप -

भामह ने निम्नलिखित तीन कारिकाओं में गद्यकाव्य के भेद आख्यायिकाके स्वरूप का वर्णन किया है। आख्यायिका 'संस्कृत' भाषा में निबद्ध होती है। आख्यायिका का गद्य क्लिष्ट न हो, शब्द सुश्रव्य हो, अर्थ भी स्पष्ट हो, समास भी क्लिष्ट न हो। आख्यायिका का विषय उदात्त होना चाहिए। इसका विभाजन उच्छवासों में विभक्त होना चाहिए। इसका नायक अपने जीवन के वृत्तान्त को स्वयं ही कहता है। इसमें भावी अर्थ को कहने के लिए कवि वक्त्र और अपर वक्त्र छन्दों का प्रयोग करता है। आख्यायिका में कवि अपने कथनों से विशिष्ट अभिप्राय को व्यक्त करता है। इसमें कन्याहरण, युद्ध, विप्रलम्भ आदि का वर्णन होता है। साथी नायक के अभ्युदय का वर्णन भी होता है। बाणभट्ट का 'हर्षचरितम् आख्यायिका का उदाहरण है।

संस्कृतानाकुलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छवासाख्यायिका मता।। काव्यालंकार25

अर्थ - संस्कृत (में निबद्ध) अक्लिष्ट, श्रव्य शब्द, अर्थ और पदवृत्ति अर्थात् समास वाले गद्य से युक्त, उदात्त अर्थ वाली, उच्छवासो में विभक्त, (रचना) आख्यायिका मानी गई है।

वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रञ्चापरवक्त्रञ्च काले भाव्यर्थ शंसि च।। काव्यालंकार26

अर्थ - उसमें (आख्यायिका में) नायक के द्वारा अपने द्वारा घटित वृत्त का आख्यान किया जाता है। (वह) यथावसर भावी घटनाओं के सूचक वस्त्र और अपरवस्त्र (छन्दों से युक्त) होती है।

कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता।
कन्याहरणसङ्ग्राम विप्रलम्भोदयान्विता।। काव्यालंकार27

अर्थ - कवि के (विशिष्ट) अभिप्राय से प्रयुक्त कुछ कथनों से युक्त (तथा) कन्याहरण, सङ्ग्राम, विप्रलम्भ (और) अभ्युदय से युक्त होती हैं।

कथा का स्वरूप –

निम्नलिखित दो कारिकाओं में भामह ने कथा के स्वरूप का वर्णन किया है। आख्यायिका के स्वरूप से भेद दिखाते हुए कथा के स्वरूप का प्रकाशन किया गया है। कथा की भाषा संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश हो सकती है जबकि आख्यायिका की भाषा संस्कृत होती है। कथा उच्छवासों में विभक्त नहीं होती। आख्यायिका में नायक अपने चरित का वर्णन करता है किन्तु कथा में वह अपने चरित का वर्णन नहीं करता अपितु अन्यवक्ता उसके चरित का वर्णन करते हैं। इसमें भामह ने हेतु दिया है कि कथा का नायक कुलीन होता है वह स्वयं अपने चरित का वर्णन नहीं कर सकता। कथा का उदाहरण 'कादम्बरी है।

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छवासवत्यपि।
संस्कृतासंस्कृताचेष्टा कथापभ्रंशभाक्तथा।। काव्यालंकार28

अर्थ - वक्त्र और अपरवक्त्र से रहित, उच्छवासों से रहित, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशसे युक्त (रचना) कथा (के रूप में) इष्ट है।

अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः।। काव्यालंकार29

अर्थ - उसमें (कथा में) नायक अपने चरित का कथन नहीं करता अपितु अन्य करते हैं। अभिजात जन अपने गुणों का प्रकाशन कैसे करें ?

भामह ने गद्य काव्य के आख्यायिका और कथा ये दो भेद स्वीकार किए हैं किन्तु परवर्ती आचार्य दण्डी ने इसका खण्डन कर दिया है तथा विश्वनाथ जी ने भी इसका समर्थन किया है।

दण्डी का अभिमत है कि आख्यायिका और कथा एक ही काव्य है केवल नाम दो हैं

तत् कथाऽख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।

दण्डी का कथन है कि छन्द, उच्छवास, कन्याहरण आदि कथावस्तु वक्ता के आधार पर काव्य का भेद स्वीकार नहीं किया जा सकता।

1.5 संस्कृत गद्य का विकास

संस्कृत साहित्य के गद्य का प्राचीनतम रूप हमें वैदिक साहित्य में देखने को मिलता है। वैदिक साहित्य के गद्य के दो प्रकार के रूप में मिलते हैं - **1.** वैदिक काल का सीधा-सादा बोलचाल का गद्य तथा **2.** लौकिक संस्कृत का प्रौढ़, समासबहुल, गाढबन्ध वाला गद। दोनों प्रकार के गद्यों में अपना विशिष्ट सौन्दर्य तथा मोहकता है। वैदिक गद्य में सीधे-सादे, छोटे-छोटे शब्दों का हम प्रयोग पाते हैं। 'ह' 'वै' 'उ' आदि अव्यय वाक्यालंकार के रूप में प्रयुक्त हैं। इनके प्रयोग से वाक्य में रोचकता तथा सुन्दरता का समावेश हो जाता है। समास की विशेष कमी है किन्तु उदाहरणों का प्रयोग अधिक हुआ है। उपमा तथा रूपक का कमनीय सन्निवेश वैदिक गद्य को विदग्धों की दृष्टि से हृदयावर्जक बनाये हुए हैं। इस कथन की पुष्टि में कालक्रम से गद्य का निरीक्षण आवश्यक होगा।

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्। स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत्; तज्जेष्ठमभवत्, तद् ब्रह्माभवत् तत् ततोऽभवत् तत् सत्यमभवत्, तेन प्रजायत।" (अथर्व. **15** काण्ड, **1** सूक्त)

ब्राह्मणग्रन्थों के गद्य का एक नमूना देखिए - अग्निर्वे देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। आग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति। (एतेरेय ब्राह्मण **1)**

"यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति तद् भूमा। अथ यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्।। (छान्दोग्य **7/24)**

वैदिक गद्य तथा लौकिक संस्कृत के गद्य को मध्य में मिलाने का काम पौराणिक गद्य करता है। यह गद्य नितान्त आलंकारिक तथा प्रासादिक है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण का गद्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसमें साहित्यिक गद्य का समग्र सौन्दर्य विद्यमान है। उसमें विशेष गाढबन्धता की कमी अवश्य है, परन्तु भागवत का गद्य तो नितान्त प्रौढ़, अलंकृत तथा भावाभिव्यंजक हैयथैव व्योमिन वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।

शिलालेखों में उपलब्ध गद्य भी नितान्त प्रौढ़, आलंकारिक तथा हृदयावर्जक है (रुद्रदामन का गिरनान लेख, **150** ई.) - 'प्रमाणमानोन्मान-स्वरगतिवर्ण-सारसवादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनै - रुपेतैकांतमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"

बहुत समय पहले से ही शिला-लेखों में गद्य का साहित्यिक प्रयोग प्रथम रूप में किया जान पड़ता है। रुद्रदाम्न के शिलालेख में और हरिषेण के प्रयाग-प्रशस्ति में विजय स्तम्भ वर्णन में स्वस्थ गद्य शैली का निदर्शन पूर्णरूपेण होता है। जैसे प्रयाग प्रशस्ति में आया है

'सर्वपृथिवीजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवन गमना-वाप्तललित सुख विचरणामाचक्षाण इव भुवोर्बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।"

हरिषेण के शिलालेख प्रयाग प्रशस्ति में अग्रणी रूप में कवियों ने जो गद्य प्रयोग किया उसी को परिमार्जित करते हुए साहित्यिक गद्य का गौरव बढ़ाने का प्रयास किया। साहित्यिक गद्य का प्रथम ग्रन्थ सुबन्धु की 'वासवदत्ता' के रूप में ही प्राप्त होता है।

विकास की दृष्टि से संस्कृत भाषा गद्य के विकास को निम्न रूप में समाझ सकते हैं-

वैदिक गद्य
⇩
दार्शनिक गद्य
⇩
सूत्रात्मक गद्य
⇩
पौराणिक गद्य
⇩
शास्त्रीय गद्य
⇩
लौकिक गद्य

संस्कृत गद्यकाव्य में तीन कवि मुख्य हैं - सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी। इनके काव्य गद्य का चरम उत्कष मिलता है। इनकी रचनाओं में ही सर्वप्रथम वास्तविक गद्य का दर्शन होता है।

1.5.1 सुबन्धु

गद्य-काव्य के लेखकों में सुबन्धु का नाम अग्रणी है, जिनका ग्रन्थ अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके समय तथा स्थान का यथार्थ परिचय अभी तक हमें नहीं चलता। बाणभट्ट के द्वारा प्रशंसित किये जाने के कारण ये बाण से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इन्होंने एक श्लेष के द्वारा न्यायवार्तिक के रचयिता प्रसिद्ध नैयायिक उद्योतकर का स्पष्टतः संकेत किया है - न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्। उद्योतकर का समय षष्ठ शताब्दी का अन्त तथा सप्तम का आदि माना जाता है। इस निर्देश में सुबन्धु का समय उद्योतकर के अनन्तर होना चाहिये। ऐतिहासिक गवेषणा उपयुक्त सामग्री के अभाव में समय का यथार्थ निरूपण नहीं कर सकती। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार हर्षवर्धन (**606-48** ई.) के सभापण्डित होने से बाणभट्ट का समय **630-640** ई. तक मानना उचित प्रतीत होता है। बाण से पूर्ववर्ती होने के कारण सुबन्धु का समय **600** ई. के आसपास तथा पश्चाद्वर्ती होने के कारण दण्डी का समय **650** ई. के बाद मानना उचित जान पड़ता है। फलतः गद्यकाव्यों के इन महनीय लेखक त्रयी सुबन्धु, बाणभट्ट तथा दण्डी का समयक्रम इस प्रकार है सुबन्धु ने अपने ग्रन्थ में जिस विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने का उल्लेख बड़ी सौन्दर्यमयी भाषा में किया गया है (वासवदत्ता **10** पद्य)

सा रसवविहता नवका विलसन्तिच चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।

विद्वानों का मत है कि यहाँ विक्रमादित्य का संकेत राजा यशोधर्मा से है, जिसने बालादित्य की सहायता से हूणों के पराक्रमी नरेश मिहिरकुल को परास्त कर भारत से निकाल बाहर किया था। इनका भी समय षष्ठ शतक का मध्य भाग है। अतः सुबन्धु का काल इसी युग से कुछ हटकर होना चाहिए। इन सब निर्देशों से षष्ठ शतक का अन्तिम भाग सुबन्धु के आविर्भाव के लिये उपयुक्त काल प्रतीत होता है।

सुबन्धु कालिदास तथा कामशास्त्र के प्रणेता वात्स्यायन से अवान्तरकालीन हैं, क्योंकि इन्होंने 'वासवदत्ता' में इन दोनों कवियों का उल्लेख किया है। शकुन्तला के द्वारा दुर्वासा के शाप के अनुभव का उल्लेख सुबन्धु को 'अभिज्ञान-शाकुन्तल', परिचत सिद्ध कर रहा है - विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वाससः शापमनुबभूव शकुन्तला। यह उल्लेख निश्चित रूप से शाकुन्तल का ही है, महाभारतीय कथा का नहीं, क्योंकि मूल-कथा में दुर्वासा का शाप अनिर्दिष्ट घटना है। 'कामसूत्र-विन्यास इव मल्लनाग-घटितकान्तारसामोदः' स्पष्टतः ही कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन का निर्देश करता है। फलतः सुबन्धु का समय निश्चितरूप से कालिदास (प्रथम शती या चतुर्थ शती) तथा वात्स्यायन (पञ्चम शती) के पश्चाद्वर्ती हैं। इसलिए षष्ठ शती का अन्त उनका समय नहीं जाना जा सकता।

वासवदत्ता नामक ग्रन्थ इनकी प्रसिद्ध रचना है। सुबन्धु की इस वासवदत्ता का सम्बन्ध प्राचीन भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका वासवदत्ता तथा उदयन की प्रणय कहानी से कुछ भी नहीं है। यह पूरा कथानक कवि के मस्तिष्क की उपज है। केवल नायिका का नाम प्राचीन है।

सुबन्धु की शैली

सुबन्धु विभिन्न विद्याओं तथा मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि नाना दर्शनों में नितान्त प्रवीण थे। इन्होंने श्लेष और उपमा के प्रसंग में रामायण, महाभारत तथा हरिवंश की अनेक प्रसिद्ध तथा अल्प-प्रसिद्ध घटनाओं और पात्रां का प्रचुर निर्देश कर अपनी विद्वता का पूर्ण परिचय दिया है। उनकी दृष्टि में सत्काव्य वहीं हो सकता है जिसमें अलंकारों का चमत्कार, श्लेष का प्राचुर्य तथा वक्रोक्ति का सन्निवेश विशेष रूप से रहता हैर

''**सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनमिव।**''

इसी भावना से प्रेरित होकर सुबन्धु की लेखनी श्लेष की रचना में ही विशेष पटु है। उन्होंने स्वयं अपने प्रबन्ध को 'प्रत्यक्षर-श्लेषमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्धनिधि' बनाने की प्रतिज्ञा की थी और इस प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह उन्होंने इस गद्यकाव्य में किया है। सुबन्धु वस्तुतः श्लेषकवि हैं। इन्होंने सभंग और अभंग अभय उभय प्रकार के श्लेषों का विन्यास कर अपने काव्य को विचित्रमार्ग का एक उत्कृष्ट उदाहरण बनाया है। परन्तु उनके श्लेष कहीं-कहीं इतने अप्रसिद्ध, अप्रयुक्त तथा कठिन हो गये हैं कि उन्हें समझने के लिये विद्वानों के लिए भी कठिन है। कहीं-कहीं तो बिना कोश की सहायता के पाठक एक पग भी आगे नहीं बढ़ता और उसके ऊपर 'कोशं पश्यन् पदे-पदे' की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है।

प्रसन्नश्लेष का यह उदाहरण रोचक तथा कमनीय है

"नन्दगोप इव यशोदयान्वितः, जरासन्ध इव घटित-सन्धि-विग्रहः, भार्गव इव सदा न भोगः, दशरथ इव सुमित्रोपेतः, सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणयान्वितो रक्षितगुश्च।"

आशय है कि यशोदा से अन्वित नन्दगोप के समान वह राजा यश और दया से अन्वित था, जरा के द्वारा संगठित अंगवाले राजा जरासन्ध के समान वह सन्धि और विग्रह (युद्ध) का सम्पादक था। सदा आकाश में गमन करने वाले (सदानभोगः) शुक्र के सदृश वह सदा दान तथा भोग से सम्पन्न था।

सुबन्धु ने विरोध, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि विभिन्न अलंकारों से अपने काव्य को सजाया है, परन्तु इन सब में भी श्लेष के कारण ही चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। अनेक उपमायें केवल शब्दसाम्य के ऊपर ही आधारित हैं। 'रक्त-पाद' होने के कारण कवि ने वासवदत्ता की उपमा व्याकरण शास्त्र से दी है। अष्टाध्यायी का एक पाद 'तेन रक्तं रागात्' सूत्र से सम्बन्धित है। उधर नायिका के भी 'पैर रक्तं रागात्' सूत्र से सम्बन्धित है। इस शब्द-साम्य के कारण ही यहाँ उपमा का चमत्कार है। नायिका का स्वरूप अत्यन्त प्रकाशमान है और इसी कारण वह उस न्यायविद्या के समान बतलाई गई है जिसके स्वरूप का निष्पादन तथा ख्याति उद्योतकर नामक आचार्य के द्वारा सम्पन्न है - न्याय-विद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्। इस प्रकार के कौतूहलजनक उपमाओं के द्वारा मस्तिष्क अवश्य पुष्ट होता है तथा कवि की विलक्षण चातुरी का भी पूर्ण परिचय मिलता है, परन्तु यह केवल शाब्दी क्रीडा है, हृदय को तनिक भी स्पर्श नहीं करती। इस शाब्दीक्रीडा में कौतुक का ही विशेष स्थान है। शब्दों का यह तमाशा तमाशबीनों के लिये ही आनन्दवर्धक हो सकता है, रसिकों के लिए नहीं।

परन्तु जहाँ सुबन्धु ने अपने श्लेष-प्रेम को छोड़कर काव्य का प्रणयन किया है, वहाँ की शैली रोचक है तथा सहृदयों का पर्याप्त मनोरंजन करती है। साधारणतया गद्यकवि पद्यों के लिखने में कृतकार्य नहीं होता, परन्तु सुबन्धु का दृष्टान्त इससे विपरीत है। वे कोमल पद्यों की रचना में सर्वथा समर्थ हैं। सत्कविता की यह स्तुति बहुत ही कोमल शब्दों में की गई है -

अविदितगुणापि सत्कवि-भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालती-माला।।

जिनके गुणों का ज्ञान नहीं होता वह भी सत्कवियों की वाणी श्रोताओं के कानों में मधु की धारा उड़ेलती है। गंध से परिचय न मिलने पर भी, मालती पुष्पों की माला नेत्रों को बरबस खींचती है।

वासवदत्ता की कल्पनाओं का प्रभाव पिछले कवियों पर भी पड़ा था। विरह दुःखों की अवर्णनीयता की यह अभिव्यंजना महिम्नःस्तोत्र के एक सुप्रसिद्ध पद्य की जननी है। सुबन्धु के शब्दों में - त्वत्कृते याऽनया यातनाऽनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा।

सुबन्धु की यह प्रसन्न श्लेषमयी वाणी आलोचकों के लिए नितान्त आह्लादजनक है -

विषधरतोऽप्यविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी स कुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।6।।

विद्वानों का यह कथन झूठा नहीं है कि खल विषधर सर्प से भी अत्यन्त विषम होता है। विषधर तो केवल 'नकुलद्वेषी' ही होता है, अर्थात् वह नकुल से ही द्वेष करता है, परन्तु 'नःकुलद्वेषी' वह अपने कुल से कभी द्वेष नहीं करता, लेकिन खलों की विचित्र दशा होती है। वह तो अपने कुल से भी द्वेष तथा विरोध करता है। इस पद्य का प्राण है 'नकुलद्वेषी' पद, जो सुभग सभङ्ग के कारण नितान्त सरस तथा सरल है।

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है, जो श्लेष के प्रपंच से रहित होने के कारण काफी मनोरंजक है। प्रभात का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है, परन्तु यहाँ भी उपमा तथा उत्प्रेक्षा का साहित्य नहीं है। सत्य तो यह है कि सुबन्धु के काव्य में कलापक्ष का ही साम्राज्य है। उनकी यह 'वासवदत्ता' उस विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है जिसका प्रत्येक कक्ष चित्रों से भूषित है तथा अलंकारों के प्राचुर्य से जो दर्शकों की आँखों को हमेशा चकाचौंध किया करता है। कुन्तक के द्वारा

वर्णित 'विचित्र-मार्ग' का सबसे सुन्दर उदाहरण है। सुबन्धु की यही कृति। बाणभट्ट की य ह आलोचना वस्तुतः श्लाघ्य तथा तथ्यपूर्ण है, जिसमें वासवदत्ता के द्वारा कवियों के दर्प को चूर्ण कर देने की बात कही गई है -

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।।

सुबन्धु तथा बाणभट्ट की शैली में महान् अन्तर है। सुबन्धु का गद्य यदि 'अक्षराडम्बर' का साक्षात् रूप है, तो बाण का गद्य स्निग्ध, कोमल 'पाञ्चाली' का भव्य प्रतीक है। सुबन्धु ने श्लेष का ही व्यूह खड़ा किया, परन्तु बाणभट्ट की दृष्टि वर्ण्य विषय तथा अवसर के ऊपर गड़ी हुई है। वह जो लिखते हैं वह अवसर तथा सन्दर्भ से संघर्ष नहीं करता। स्निग्ध, कोमल तथा हृदयावर्जक गद्य का जीवित प्रतीक बाण सहृदयों के हृदय को स्पन्दित करता है, जबकि सुबन्धु का गद्य केवल मस्तिष्क से ही टक्कर खाता हुआ कथमपि प्रवेश पाता है।

दण्डी से भी सुबन्धु का पार्थक्य स्पष्ट है। दण्डी की तीव्र निरीक्षणशक्ति तथा यथार्थवादी शब्दविन्यास का अभाव 'वासवदत्ता के लोकप्रिय न होने का पर्याप्त हेतु है। सुबन्धु, बाणभट्ट तथा कविराज के साथ 'वक्रोक्ति-मार्ग' के निपुण कवि माने गये हैं -

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्ग-निपुणाः चतुर्थो विद्यते न वा।।

परन्तु बाण का 'कादम्बरी' के सामने 'वासवदत्ता का काव्य पण्डितों की गोष्ठी का ही केवल विषय है, विदग्धों की गोष्ठी से उसका सीधा सम्पर्क नहीं है।

1.5.2 बाणभट्ट

हर्षचरित के आरम्भिक उच्छवासों में बाण का आत्मवृत्त वर्णित है। उसके आधार पर उनके असामान्य व्यक्तित्व का एक रमणीय चित्र हमारे सामने प्रस्तुत है। बाणभट्ट के पूर्वज सोननद पर प्रीतिकूट नामक नगर में निवास करते थे। वह स्थान सम्भवतः बिहार प्रान्त के पश्चिमी भाग में था। बाण का कुल प्राचीनकाल से ही धर्म तथा विद्या के लिये प्रख्यात था। हर्ष का जन्म **590** ई. में हुआ था तथा उनका राज्याभिषेक **606** ई. में एवं उसकी मृत्यु **648** ई. में हुई थी। उनके शासनकाल का वर्णन **629** ई. में चीन से आये ह्वेनसांग ने विस्तार से किया है। बाणभट्ट वात्स्यायन गोत्र से सम्बन्धित थे। बाण के एक प्राचीन पूर्वज का नाम 'कुबेर' था। इनके घर पर वेदाध्ययन के लिए विद्यार्थियों का जमघट लगा रहता था। बाण ने तो कादम्बरी में यहाँ तक लिखा है कि उनके घर पर ब्रह्मचारी लोग शंकित होकर यजुर्वेद पढ़ते तथा सामवेद गाया करते थे, क्योंकि सब वेदों का अभ्यास करने वाले, मैनाओं के साथ-साथ पिंजड़ों में बैठे हुए, तोते उनको पद-पद पर टोका करते थे -

जगुर्गृहेऽभ्यस्तवाङमयैः ससारिकैः पंजरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शंकिताः।।

कुबेर के चार पुत्रों में पशुपति सबसे छोटे थे। उनके पुत्र अर्थपति हुए। अर्थपति से चित्रभानु उत्पन्न हुए। यह भी सकल शास्त्र में पण्डित थे। उन्होंने यज्ञ-धूम से उत्पन्न हुई कीर्ति को सकल दिगन्तों में फैलाया। इन्हीं चित्रभानु से बाणभट्ट का जन्म हुआ। थोड़ी ही उम्र में बाण के माता तथा पिता उन्हें अनाथ बनाकर इस संसार से चल बसे। बाणभट्ट के पास पैतृक सम्पत्ति पर्याप्त थी। किसी सुयोग्य अभिभावक के अभाव में बाणभट्ट बुरे-बुरे साथियों के साथ आखेट आदि दुर्व्यसनों में लिप्त रहा। उसे देशाटन का बड़ा शौक था। कुछ साथियों के साथ देशाटन को निकला। बुद्धि-विकास, सांसारिक

अनुभव तथा उदार विचार कमा कर वह घर लौटा। लोग उसका उपहास करने लगे। अचानक एक दिन हर्ष के चचेरे भाई कृष्ण के एक दूत ने आकर बाण को एक पत्र दिया। पत्र में लिखा था कि श्रीहर्ष से कितने लोगों ने तुम्हारी चुगली खाई, राजा तुमसे नाराज हो गये हैं। अत एव शीघ्र यहाँ चले आओ! बाण श्रीहर्ष के पास गये। राजा ने पहले तो बाण की अवहेलना की, परन्तु बाद में उनकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर बाण को आश्रय दान दिया। बाण ने बहुत दिनों तक हर्ष की सभा को सुशोभित किया। अनन्तर अपने घर लौट आये और लोगों के हर्ष का चरित पूछने पर बाण ने 'हर्षचरित' की रचना की।

इससे स्पष्ट है कि बाण युवावस्था में बुरी संगत के कारण कुछ अव्यवस्थित से थे, परन्तु विद्वता के प्रभाव से श्रीहर्ष के अत्यन्त प्रियपात्र बन गये। बाण का जीवन दरिद्रता में नहीं बीता, बल्कि उनके पास पैतृक सम्पत्ति बहुत थी तथा हर्ष के आश्रय पाने से उनकी सम्पत्ति और भी बढ़ी। उन्होंने अपना जीवन एक समृद्ध व्यक्ति की भांति बिताया। बाण का यह जीवन साधारणतया निर्धनतया में समय बिताने वाले संस्कृत कवियों के जीवन से अनेक अंशों में भिन्नता रखता है। उनके पुत्र के अस्तित्व के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। कादम्बरी पूर्ण होने से पहले ही उनका देहान्त हो गया। बाद में उनके पुत्र ने इसकी पूर्ति की। यही कादम्बरी का उत्तरार्ध है। ऐसा निःस्पृह तथा पितृभक्त पुत्र साहित्य - संसार में शायद ही कोई दूसरा मिल सके। उत्तरार्ध के आरम्भ में बाण के पुत्र ने लिखा है-

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दु:खं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्धं एष च मया न कवित्वदर्पात्।।

पिताजी के स्वर्गवासी होने पर यह कथा-प्रबन्ध भी उनके वचन के साथ ही संसार में विच्छिन्न हो गया। इसके समान्त न होने से सज्जनों के दुःख को देखकर ही मैंने इसे आरम्भ किया है, कवित्व के घमण्ड से नहीं। यह तो पिताजी का ही प्रभाव है कि उनके गद्य की भाँति मैं लिख चुका हूं, नहीं तो कादम्बरी (शराब) का स्वाद लेकर मैं बिल्कुल मतवाला सा हो गया हूँ, मुझे कुछ आगे-पीछे नहीं सूझता। मुझे भय है कि कहीं रस से वर्जित अपने वचनों से उसकी पूर्ति कर विदग्धों की अवहेलना का पात्र न बनूँ -

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मन किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसंदधानः।।

ऐसे निःस्पृह पुत्र से साहित्य-संसार अनभिज्ञ है। डॉक्टर व्यूलर ने इनका नाम भूषण भट्ट बतलाया था, परन्तु अन्य विद्वानों से इनका नाम 'पुलिन' या 'पुलिन्दभट्ट' सिद्ध होता है। कादम्बरी की शारदा लिपि में लिखित किसी प्रति की पुष्पिका में भी यही नाम मिलता है। इसकी प्रामाणिकता मुंज के समय (**10**वीं सदी के अन्त) में लिखित धनपाल की तिलकमञ्जरी से सिद्ध होती है-

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः।।

इस पद्य में श्लेषालंकार के द्वारा बाण के पुत्र का नाम 'पुलिन्ध्र' बतलाया गया है। ज्ञात नहीं कि बाणभट्ट के कितने बेटे थे। उत्तरार्द्ध कादम्बरी के रचयिता पुलिनभट्ट के विषय में हमारा ज्ञान बिल्कुल सच्चा है, परन्तु अन्य किसी पुत्र के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। एक प्रसिद्ध किंवदन्ती के आधार पर बाणभट्ट के कई पुत्रों का होना सिद्ध होता है।

हर्षवर्धन के सभापण्डित होने के कारण बाणभट्ट का समय ईसा की सातवीं सदी में सिद्ध होता है। बाण का समय संस्कृत-कवियों की ऐतिहासिक क्रम-व्यवस्था के लिए बड़ा उपयोगी है। यदि बाण के

हर्ष के समकालिक सिद्ध होने की बात न भी ज्ञात होती, तथापि उनका सातवीं सदी में आविर्भाव होना परवर्ती कवियों के उद्धरणों से अवश्यमेव सिद्ध हो जाता। सबसे पहले वामन (**779-813** ई.) ने **'**काव्यालंकारसूत्र**'** में कादम्बरी के एक लम्बे समासवाले गद्य को उद्धृत किया है, जिससे स्पष्ट ही वामन में बाणभट्ट की प्राचीनता सिद्ध होती है। अत एव बाण का काल निश्चित रूप से सातवीं सदी है। गोवर्धनाचार्य बाणभट्ट को वाणी का साक्षात् अवतार मानते हैं। उनका कथन है कि जिस प्रकार अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए शिखण्डिनी शिखण्डी बन गई थी, उसी भाँति पुरुष रूप से अतिशय चमत्कार पाने की इच्छा से वाणी (सरस्वती) ने बाण का रूप धारण किया

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी बाणो बभूवेति।।

बाणभट्ट के काव्य में चरित्र-चित्रण की अद्भुत कला है। उनके पात्र इतनी सजीवता के साथ चित्रित किये गये हैं कि उनकी मंजुल मूर्ति हमारे नेत्रपटल के सामने आकर उपस्थित हो जाती है। प्रजा-पालक तथा पराक्रमी महाराज शूद्रक की वीर मूर्ति सबके हृदय में उत्साह का संचार करती है। सौम्य तापस हारीत, ज्ञानवृद्ध जाबालि, वदान्य नरपति तारापीड, शास्त्र तथा लोककुशल अमात्य शुकनास, शुभ्रवसना तपस्विनी महाश्वेता, कमनीयकलेवरा कादम्बरी्रकवि की तूलिका से चित्रित ये पात्र चित्ता पर अपना अमिट प्रभाव डालते हैं। सच्चा कवि वही होता है जो संसार का विविध अनुभव प्राप्त कर उसके मार्मिक पक्ष के ग्रहण में समर्थ होता है। इसी कसौटी पर कसने से बाणभट्ट की कविता खरे सोने के समान खरी उतरती है। कवि का लोकवृत्तान्त का ज्ञान नानात्मक तो था ही, पर उसकी यथार्थता और भी चमत्कारिणी है। बाणभट्ट कभी तो सुख-समृद्धि तथा भोग-विलास के जीवन चित्रित करने में अनुरक्त दिख पड़ते हैं, तो कभी वे तपस्वी जीवन की मार्मिक अभिव्यंजना में निरत दिखाई पड़ते हैं। तथ्य यह है कि बाणभट्ट का अनुभव ही विशाल, विविध तथा यथार्थ था। बाण के पात्र वैयक्तिकता से मण्डित विशिष्ट प्राणी हैं।हम इस दृश्य को कभी नहीं भूल सकते जिसमें बाणभट्ट ने आश्रम के वृद्ध, अंध तापसों को परिचित वानरों के द्वारा छड़ी पकड़कर भीतर आने और बाहर ले जाने का वर्णन किया है - परिचितशाखामृग-कराकृष्टयष्टि -निष्काश्यमान-प्रवेश्यमान-जरदन्धतापसम्। ऋतुओं का चित्रण भी बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है। प्रभात तथा सन्ध्या, अन्धकार तथा चन्द्रोदय आदि प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के वर्णन बड़ी ही सहृदयता तथा यथार्थता के साथ अङ्कित किये गये हैं। अच्छोद सरोवर का वर्णन भी कवि की निरीक्षण शक्ति के प्राचुर्य का सुतरां बोधक है। बाण जानते हैं कि वायु के द्वारा उद्भूत जल-तरंग के कणों में सूर्य की किरण पड़ने पर हजारों इन्द्रधनुष उत्पन होते हैं। कहीं तट के ऊपर उगने वाले कदम्ब के पेड़ों से बन्दरों के कूदने का वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक है - तट - कदम्बशाखाधिरूढ - हरिकृतजलप्रपातक्रीडम्। सरोवर की स्वच्छता के प्रदर्शन के लिए बाण ने उपमाओं की लड़ी खड़ी कर दी है।

अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य दृष्टव्यदर्शन - फलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः दृष्टः आल्हादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणां सीमान्त- लेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजननानां परिसमाप्तिः विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः। सुभगपदों का विन्यास इससे अधिक सुन्दर नहीं हो सकता। -

बाण की कादम्बरी में प्रकृति के सौम्य तथा उग्र रूप का वर्णन जितना रोचक है, उतना ही रोचक है उसके नाना वस्तुओं का वर्णन। वर्णनों को संश्लिष्ट तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए, भावों में तीव्रता प्रदान करने के हेतु बाण ने उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, विरोधाभास आदि अलंकारों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है, परन्तु **'**परिसंख्या**'** अलंकार के तो वे सम्राट् प्रतीत होते हैं। बाण के समान

किसी अन्य कवि ने **'श्लिष्ट परिसंख्या'** का इतना चमत्कारी प्रयोग शायद ही किया हो। इन अलंकारों के प्रयोग ने बाण के गद्य में अपूर्व जीवनी-शक्ति डाल दी है। आदर्श गद्य के जिन गुणों का उल्लेख बाण ने हर्षचरित में किया है वे उनके गद्य में विशदतया वर्तमान हैं -

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषः स्पष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥

अर्थ की नवीनता, स्वाभावोक्ति की नागरिकता, श्लेष की स्पष्टता, रस की स्फुटता, अक्षर की विकटबन्धता का एकत्र दुर्लभ सन्निवेश कादम्बरी को मंजुल रसकोमल बनाये हुए हैं। उनके श्लेष - प्रयोग जूही की माला में पिरोये गये चम्पक पुष्पां के समान मनमोहक होते हैं –

निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।

रसनोपमा का यह उदाहरण कितना मनोरम है -

क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुभासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकरेण इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

'परिसंख्या' का यह रोचक प्रयोग विदग्धों का नितान्त हृदयावर्जक है, जहाँ बाणभट्ट जाबालि के आश्रम का सुन्दर चित्र खींच रहे हैं

यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमभवम्, एणकानां गीतव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

कादम्बरी में हृदयपक्ष का प्राधान्य है। कवि अपने पात्रों के हृदय में प्रवेश करता है, उनकी अवस्था-विशेष में होने वाली मानस वृत्तियों का विश्लेषण करता है तथा उचित पदन्यास के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करता है। पुण्डरीक के वियोग में महाश्वेता के हार्दिक भावों की रम्य अभिव्यक्ति बाण की ललित लेखनी का चमत्कार है। चन्द्रापीड के जन्म के अवसर पर राजा तथा रानी के हृदयगत कोमल भावनाओं का चित्रण बड़ा ही रमणीय तथा तथ्यपूर्ण हुआ है। चन्द्रापीड के प्रथम दर्शन के अनन्तर स्वदेश लौट आने पर कादम्बरी के भावों का चित्रण कवि के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सुन्दर निदर्शन है। बाण की दृष्टि में प्रेम भौतिक सम्बन्ध का नामान्तर नहीं है, प्रत्युत वह जन्मान्तर में समुद्भूत आध्यात्मिक संबंध का परिचायक है। कादम्बरी **'जन्मान्तर-सौहृद'** का सजीव चित्रण है। विस्मृत अतीत तथा जीवित वर्तमान को स्मृति के द्वारा एक सूत्र में बाँधनेवाली यह प्रणयकथा है। बाणभट्ट ने दिखलाया है कि सच्चा प्रेम कुल और समाज की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है। वह संयत तथा निष्काम होता है। काल की कराल छाया न उसे आक्रान्त कर सकती है, न काल का प्रवाह उसकी स्मृति को मलिन और धुंधला बना सकता है। महाश्वेता तथा पुण्डरीक का, कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का अनेक जन्मों में अपनी चरितार्थता तथा सिद्धि प्राप्त करने वाला प्रेम इस आदर्श प्रणय का सच्चा निदर्शन है।

शरीर का परिवर्तन भले हो जाय, कमवश प्राणी नाना योनियों में भले ही भ्रमण करता रहे, परन्तु उसका दृढ़ प्रेम सदा ही उसका अनुगमन किया करता है। कादम्बरी की कथा हमें महान् तथ्य की सत्यता भली-भाँति प्रमाणित करती है।

शुकनास ने राजकुमार चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों के वर्णन-प्रसंग में नीति तथा काव्य दोनों का बड़ा ही रम्य चमत्कार प्रस्तुत किया है। रूपों का विन्यास तथा उपमा का निवेश इतना सुन्दर है कि

लक्ष्मी की मूर्ति अपने पूर्ण वैभव के साथ हमारे नेत्रों के सामने सजीव हो उठती हैं। 'लक्ष्मी तृष्णारूपी विषलता के लिए संवर्धन की जलधारा है, इन्द्रिय-रूपी मृगों को लुभाने के लिए
व्याध की गीत है, सच्चरितरूपी चित्रों को पोंछ डालने के लिए धूम की रेखा है, यह सब अविनयों की पुरःसर पताका है, क्रोधावेग-रूपी ग्राहों की उत्पत्ति के लिए नदी है; विषयमधुओं की यह विस्तृत भूमि है। ''यह वर्णन रूपक की छटा से कमनीय है। अन्यत्र विरोधाभास का अपूर्व विलास है।

बाण की गद्यशैली : पाञ्चाली -

सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूपं भवतः, क्षुद्र-जनक्षुण्ण एव मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चित् प्राकृत इव विकलीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि। क्व ते तद् धैर्यम्? क्वासौ इन्द्रिय-जयः?

उपदेश देने के समय विषय को हृदयंगम तथा प्रभावशाली बनाने के विचार से इसी शैली का प्रयोग है। मन्त्री शुकनास युवराज चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों को दिखलाते समय लघु वाक्यों का प्रयोग कर रहा है-

लब्धापि दुःखेन पाल्यते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमभीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्धं गणयति।

परन्तु राजवैभव, नारी की रूपछटा और प्रकृति की रमणीयता के चित्रण के अवसर पर कवि ऐसे दीर्घ समास तथा अलंकारों से सुशोभित वाक्यों का प्रयोग करता है, जिससे हृदय पर वर्णन अपने संश्लिष्ट तथा संघटित रूप में अंग-प्रत्यङ्ग से परिपूर्ण भाव में प्रभाव दिखता है तथा उनके नेत्रों के सामने वस्तु का पूर्ण चित्र स्पष्ट हो जाता है। शूद्रक, जाबालि का आश्रम, विन्ध्याटवी, महाश्वेता तथा कादम्बरी का वर्णन इसी शैली में प्रयुक्त होने से ये इतने सुन्दर तथा प्रभावशाली हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बाण के गद्य में शैली तथा वर्ण्य विषय में अद्भुत सामञ्जस्य है।

त्रिलोचन कवि की दृष्टि में बाण की रसभाववती कविता के सामने अन्य कवियों की रचना केवल चपलतामात्र है।

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।

राजशेखर के मत में बाण की शैली पाञ्चाली रीति का भव्य निदर्शन है -

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शिला-भट्टारिका-वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

बाण संस्कृत भाषा के सम्राट् हैं। वाक्यों के नवीकरण की विलक्षण योग्यता बाणभट्ट में है। 'कथितपदता' तो ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती। सर्वत्र नवीन पदविन्यास, नूतन अर्थाभिव्यक्ति, अभिनव भावभंगी आलोचकों के लिए विस्मयावह आनन्द का साधन बनती है। संस्कृत गद्य में कितनी ओजस्विता आ सकती है, कितना मंजुल प्रवाह हो सकता है, कितनी भावाभिव्यञ्जना हो सकती है,इसकी पूर्ण परिचायक बाणभट्ट की कादम्बरी है। इसीलिए प्राचीन आलोचक धर्मदास मुग्ध होकर बाण की स्तुति में यथार्थ रूप से कह रहे हैं।

रुचिर - स्वर - वर्णपदा रसभावती जगन्मनी हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।

1.5.3 दण्डी

'अवन्ति-सुन्दरी' के आधार पर दण्डी का चरित्र सूक्ष्म मात्रा में प्राप्त होता है। कविवर भारवि के तीन लड़के हुए, जिनमें 'मनोरथ' मध्यम पुत्र था। मनोरथ के भी चारों वेदों की भाँति चार पुत्र उत्पन्न हुए,

जिनमें **'**वीरदत्त**'** सबसे छोटा होने पर भी एक सुयोग्य दार्शनिक था। **'**वीरदत्त**'** की स्त्री का नाम **'**गौरी**'** था। इन्हीं से कविवर दण्डी का जन्म हुआ था। बचपन में ही इनके माता-पिता का निधन हो गया था। ये काञ्ची में निराश्रय ही रहते थे। एक बार जब काञ्ची में विद्रोह हुआ**,** तब ये काञ्ची छोड़कर जंगलों में रहने लगे। कुछ समय बाद शहर में शान्ति होने पर ये फिर पल्लव-नरेश की सभा में आ गए और वहीं रहने लगे। भारवि और दण्डी के सम्भावित सम्बन्ध के विषय में अब संदेह होने लगा है। जिस श्लोक के आधार पर भारवि के साथ दण्डी के प्रपितामह दामोदर की एकता मानी जाती थी उस श्लोक में नये पाठ-भेद मिलने से इस मत को बदलना पड़ा है। नवीन पाठ इस प्रकार है -

स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवं गिराम्।
अनुरुध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने।।23।।

पहला पाठ प्रथमान्त **'**भारविः**'** था**,** अब उसके स्थान पर द्वितीयान्त **'**भारवि**'** मिला है**,** जिससे यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन के साथ हो सकी। अतः दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे**,** भारवि नहीं। इस नये पाठ-भेद से दोनों के समय-निरूपण के विषय में किसी तरह का परिवर्तन आवश्यक नहीं है। इस वर्णन से दण्डी के अन्धकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण पड़ती है। भारवि का सम्बन्ध उत्तरी भारत में न होकर दक्षिण भारत में था। हिन्दुओं की पवित्र नगरी काञ्ची (आधुनिक कांजीवरम्) दण्डी की जन्मभूमि थी। इनका जन्म एक अत्यन्त शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म होना ऊपर के वर्णन से बिल्कुल निश्चित है। काञ्ची के पल्लव-नरेशों की छत्रछाया में इन्होंने अपने दिन बहुत ही सुखपूर्वक बिताए थे।

इस वर्णन से दक्षिण भारत की एक किंवदन्ती की भी यथेष्ट पुष्टि होती है। एम. रंगाचार्य ने एक किवदन्ती का उल्लेख किया है कि पल्लव राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये ही दण्डी ने **'**काव्यादर्श**'** की रचना की थी। काव्यादर्श के प्राचीन टीकाकार तरुणवाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने निम्नलिखित प्रहेलिका में काञ्ची तथा वहाँ के शासक पल्लव-नरेशों की ओर इङ्गित किया है-

नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता।
अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः।।

अत एव दण्डी की काञ्ची के पल्लव-नरेश के आश्रय में मानना इतिहास तथा किंवदन्ती दोनों से सिद्ध होता है।-

नवम शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने से निश्चित हो जाता है कि उनका समय उक्त शताब्दी से पीछे कदापि नहीं हो सकता। सिंधली भाषा के अलंकारग्रन्थ **'**सिय-बस-लकर**'** **(**स्वभाषालंकार) की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है। इसका रचयिता**,** राजा सेन प्रथम महावंश के अनुसार **843-66** ई. तक राज्य करता था। इससे भी पहले के कन्नड़ भाषा के अलंकारग्रन्थ **'**कविराजमार्ग**'** में काव्यादर्श की यथेष्ट छाया देखी गई है। इसके उदाहरण या तो काव्यादर्श से पूर्णतः लिये गये हैं या कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित रूप में रखे गये हैं। हेतु**,** अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण तो दण्डी से अक्षरशः मिलते हैं। इस के लेखक **'**अमोघवर्ष**'** का समय **815** ई. के आसपास माना जाता है। अत एव काव्यादर्श की रचना नवीं शताब्दी के अनन्तर कदापि स्वीकृत नहीं की जा सकती। यह तो दण्डी के काल की अंतिम सीमा है। अब पूर्व की सीमा की ओर ध्यान देना चाहिए। यह निर्विवाद है कि काव्यादर्श के समय पद्य दण्डी की ही मौलिक रचना नहीं हैं**,** उनमें प्राचीनों के भी पद्य सन्निविष्ट हैं। **'**लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः**'** में दण्डी के **'**इति**'**

शब्द के स्पष्ट प्रयोग से यहाँ जाना जाता है कि कालिदास के प्रसिद्ध पद्यांश **'**मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति**'** से ही उद्धरण दिया गया है। अतः इनके कालिदास के अनन्तर होने में तो संदेह का स्थान ही नहीं है**,** परन्तु अन्य भाव-साम्य से ये बाणभट्ट के भी अनन्तर प्रतीत होते हैं।

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः।।

काव्यादर्श के इस पद्य में कादम्बरी में चन्द्रपीड को शुकनास द्वारा दिए गए उपदेश की स्पष्ट छाया दिख पड़ती है। दण्डी को बाणभट्ट (**7**वीं सदी पूर्वार्द्ध) के अनन्तर मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं जान पड़ती है। प्रो. पाठक की सम्मति में काव्यादर्श में निर्वर्त्य**,** विकार्य तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यपदीय के कर्ता भर्तृहरि (**650** ई.) के अनुसार किया गया है। काव्यादर्श में उल्लिखित राजवर्मा (रातवर्मा) को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय (जिसका विरुद अथवा उपनाम राजवर्मा था) मान लें**,** तो किसी प्रकार की अनुपपत्ति उपस्थित नहीं होती। प्रो. आर. नरसिंहाचार्य तथा डॉ. बेलबल्कर ने भी इन दोनों की एकता मानकर दण्डी का समय सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध बतलाया है। शैव-धर्म के उपयोजक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय **690-715** ई. माना जाता है। अतः इनके सभा-कवि दण्डी का भी समय बाण के पश्चात् सप्तम शती के अन्त तथा अष्टम के आरम्भ में मानना उचित प्रतीत होता है।

ने इस प्रख्यात पद्य में दण्डी के तीन ग्रन्थों के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश किया है -

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।

दण्डी की इस विश्रुत प्रबन्धत्रयी में काव्यादर्श निःसन्देह अन्यतम रचना है । इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते। आज कोई भी विज्ञ आलोचक **'**छन्दोविचित**'** तथा **'**कला-परिच्छेद**'** को**,** जो काव्यादर्श के आरम्भ तथा अन्त में निर्दिष्ट किये गये हैं**,** स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने के पक्ष में नहीं है। **'**छन्दोविचिति**'** तो छन्दःशास्त्र का ही अभिधान है और दण्डी ने भी स्वयं इसे काव्य में प्रवेश पाने के लिए विद्या के रूप में निर्दिष्ट किया है। दण्डी की ही दृष्टि में यह विद्या है**,** रचना नहीं। इसी प्रकार **'**कलापरिच्छेद**'** भी काव्यादर्श का ही कोई अनुपलब्ध अंश है**,** जिसे दण्डी ने अवश्य लिखा था**,** परन्तु आज यह उपलब्ध नहीं है।

दण्डी का द्वितीय ग्रन्थ कौन है**?** दण्डी के नाम से **'**दशकुमार-चरित**'** नामक रोमाञ्चक आख्यानों तथा कौतूहल से परिपूर्ण ग्रन्थ पर्याप्तरूपेण प्रख्यात है। दशकुमार-चरित के विभिन्न पाठ-संस्करणों की परीक्षा करने से स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं। भूमिका**,** मूल ग्रन्थ तथा पूरक भाग**,** जिनमें क्रमशः **5, 8** तथा **1** उच्छवास हैं। ये तीनों भाग आपस में मेल नहीं खाते। भूमिका भाग (**5** उच्छवास) पूर्वपीठिका के नाम से प्रख्यात है तथा पूरक भाग उत्तरपीठिका के नाम से और मध्यवर्ती मूल ग्रन्थ दशकुमारचरित के अन्वर्थक नाम से प्रख्यात है। मूलग्रन्थ और पूर्वपीठिका के कथानकों में अवान्तर घटना-वैषम्य है। मूलग्रन्थ के आठ उच्छवासों में केवल आठ ही कुमारों के विचित्र चरित्र का उपन्यास है**,** परन्तु नाम की सार्थकता सिद्ध करने के विचार से पूर्वपीठिका में अन्य दो कुमारों का चरित जोड़ दिया गया है और अधूरे ग्रन्थ को पूर्णता की कोटि पर पहुँचाने के लिए अन्त में उत्तरपीठिका भी जोड़ दी गई है। इस प्रकार आरम्भ में पूर्वपीठिका से और अन्त में उत्तररपीठिका से संपुटित समग्र ग्रन्थ ही आज **'**दशकुमार-चरित**'** के नाम से प्रख्यात है।

इधर दण्डी के नाम से प्रकाशित 'अवन्तिसुन्दरी-कथा' तथा दशकुमारचरित के तुलनात्मक अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अवन्तिसुन्दरी कथा दण्डी की मौलिक रचना है। हस्तलेखों की पुष्पिका का प्रामाण्य तो है ही, अप्पयदीक्षित (प्रसिद्ध वेदान्ती से भिन्न व्यक्ति) ने अपने 'नामसंग्रहमाला' नामक ग्रन्थ में 'इत्यवन्तिसुन्दरीये दण्डिप्रयोगात्' लिखकर दण्डी को इस ग्रन्थ का प्रामाणिक रचयिता सिद्ध किया है। इस कथा में 'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका में वर्णित वृत्तान्त है। अतः अनुमान लगाना सहज है कि 'अवन्तिसुन्दरी' ही दण्डी की विश्रुत कथा है, जिसका सारांश किसी व्यक्ति ने दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के रूप में उपनिबद्ध किया। यह तथ्य ध्यातव्य है कि दशकुमारचरित का नाम न तो अलंकार के किसी ग्रन्थ में और न किसी व्याख्या-ग्रन्थ में ही निर्दिष्ट किया गया है। इसकी सर्वाधिक प्राचीन टीका 'पदचन्द्रिका' कवीन्द्राचार्य सरस्वती की रचना है (पुष्पिका से प्रमाणित)। फलतः दशकुमारचरित की रचना का काल **17**वीं शती से कुछ प्राचीन होना चाहिये।

अवन्तिसुन्दरी बड़ी उदारशैली में विरचित कथा है। वर्ण्यविषय के अनुसार शैली में भी अन्तर पाते हैं। सामञ्जस्य के लिए जहाँ समास की बहुलता है, वहाँ उपदेश की स्थलों पर असमस्त पदों का प्राचुर्य है। इस गद्यकथा को लक्षित कर 'दण्डिनः पदलालित्यम्' वाला आभाणक विदग्ध-गोष्ठी में प्रचलित हुआ था। उदाहरणस्वरूप लक्ष्मी का वर्णन ललितपदों का विन्यास प्रस्तुत करता है - रज्जुरियम् उद्बन्धनाय सत्यवादितायाः, विषमियं जीवितहरणाय माहात्म्यस्य, शस्त्रमियं विशसनाय सत्पुरुषवृत्तानाम्, अग्निरियं निर्दहनाय धर्मस्य, सलिलमियं निमज्जनाय सौजन्यस्य, धूलिरियं धूसरीकरणाय चारित्रस्य। इसके आरम्भ में प्राचीन कविविषयक स्तुति-पद्यों के अनन्तर दण्डी तथा उनके पूर्व-पुरुषों का ऐतिहासिक वृत्तान्त वर्णित है जो आरम्भ में दिया गया है और जिससे दण्डी के आविर्भाव का काल सप्तम शती का अन्तिम अथवा अष्टम शती का प्रथम चरण सिद्ध होता है। अवन्तिसुन्दरी कथा ही निश्चयेन दण्डी का प्रख्यात गद्यकाव्य है। यह अधूरा ही उपलब्ध है। यदि यह पूर्णरूपेण उपलब्ध हो जाय, तो दशकुमारचरित के साथ इसके सम्बन्ध की पूर्ण समीक्षा हो सके।

दण्डी के तृतीय प्रबन्ध की सूचना हमें भोजराज के शृंगारप्रकाश से प्राप्त होती है। भोज ने इसे दो बार अपने पूर्वोक्त ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया है - 'दण्डिनो धनञ्जयस्य वा द्विसन्धाने' (सप्तम प्रकाश) तथा 'रामायण-महाभारतयोर्दण्डिद्विसन्धानमिव' (अष्टम प्रकाश)। दण्डी का यह द्विसन्धान काव्य श्लेष के द्वारा रामायण एवं महाभारत के दोनों कथानकों को समान पद्यों में वर्णन करता है, यह महाकाव्य आज उपलब्ध नहीं है परन्तु भोज के द्वारा निर्दिष्ट होने से इसकी सत्ता एकादश शती में अनुमानसिद्ध है। इस प्रकार दण्डी की प्रबन्धत्रयी है - काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरी तथा द्विसन्धानकाव्य। अत्यन्त प्रख्यात होने से दशकुमारचरित का परिचय यहाँ दिया जाता है।

सौबन्धव गद्य के समान न तो यह प्रत्यक्षर-श्लेषमय है और न बाणीय गद्य के सदृश यह समासों से लदी हुई तथा गाढबन्धता से मण्डित है। तथ्य यह है कि गद्य के इतिहास में दण्डी का अपना निजी मार्ग है। वे सुबन्धु तथा बाण इन दोनों की शैली का अनुगमन न कर एक नवीन प्रकार की शैली के उद्भावक हैं, जिनके विशेष गुण हैं - अर्थ की स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, पद का लालित्य तथा दैनन्दिन प्रयोग की क्षमता। 'दण्डिनः पदलालित्यम्' के ऊपर पण्डितसमाज अपने को निछावर किए हुए हैं।

काम का यह वर्णन इस विषय में उदाहरण माना जा सकता है - कामस्तु विषयासक्तचेतसोः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयसुखस्पर्शविशेषः। परिवारस्त्वस्य यावदिह रम्यमुज्ज्वलं च। फलं पुनः परमाह्लादनं परस्परविमर्दजन्म स्मर्यमाणामधुरम् उदीरिताभिमान मनुत्तामं सुखमपरोक्षं स्वसंवेद्यमेव।
व्यावहारिक शैली के अनुरूप ही शब्दों का व्यावहारिक चयन है। व्यवहारों में आने वाली वस्तुओं के परिचायक शब्दों का अर्थ-संकेत संस्कृतकोषों में कई स्थानों पर किया गया है, परन्तु उन्हें प्रयोग में लाने की प्रेरणा दण्डी ने प्रदान की। दण्डी ने उन्हें व्यवहार-योग्य बनाया। इन शब्दों का आज राष्ट्रभाषा में व्यवहार उसे सक्षम तथा सामर्थ्यशाली बनायेगा। पान के पनडब्बा के लिए **'**उपहस्तिका**'**, लँगोटी के लिए **'**मलमल**'**, एक जोड़ी धोती के लिए 'उद्गमनीय**'**, पानी निकालने के लिए पात्र या डोल के निमित्ता **'**उदञ्चन**'**, भूसी के लिए **'**किशारु**'** तथा तक्र के लिए **'**कालशेय**'**, युद्धपोत के लिए **'**मद्गु**'**, जनपदीय सभा के लिए **'**पंचवीस्गोष्ठ**' -** इन शब्दों का अर्थतः संकेत प्राचीन होने पर भी प्रयोजन प्रथम व्यवहार दण्डी का वैशिष्ट्य है। **'**अभवदीयं हि नैव किंचिद् मत्सम्बद्धम्**' -** मेरा सब कुछ आप ही का है तथा **'**जीवितं ही नाम जन्मवतां चतुःपंचाप्यहानि**' -** जीवन है दो चार दिनों का आदि वाक्य छोटे होने पर भी नितान्त अभिव्यंजक तथा सरस हैं। इन्हीं गुणों के कारण प्राचीन आलोचक लोग दण्डी को वाल्मीकि तथा व्यास के अनन्तर होने वाला तत्समकक्ष तृतीय कवि मानते हैं -

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

1.6 अन्य गद्य लेखक

सुबन्धु, बाण एवं दण्डी के रूप में संस्कृत गद्यकाव्य ने चरमोत्कर्ष प्राप्त किया। परवर्ती समय में भी गद्य रचना होती रही किन्तु गद्य का वैसा उत्कृष्ट स्वरूप परवर्ती काव्यों में प्राप्त नहीं होता। कुछ प्रमुख गद्यकार निम्नलिखित है।

धनपाल - दशमशती के उत्तरार्ध एवं एकादश शती के पूर्वार्ध के धनपाल ने तिलकमञ्जरी की रचना की। ये राजा मुंज की सभा में सम्मानित कवि थे राजा मुज ने इनकी काव्य प्रतिभा से अभिभूत होकर उन्हें **'**सरस्वती**'** विरूद्ध से सम्मानित किया था। तिलकमञ्जरी पर कादम्बरी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है तथा तत्कालीन भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों प्रतिबिम्बित होती है साथ ही तत्कालीन शिल्पकला एवं मूर्तिकला का सुन्दर चित्रण भी तिलक मञ्जरी में प्राप्त होता है।

वामनभट्ट बाण - वामनभट्ट राजा वेमभूपाल के सभा कवि थे। इनका समय पन्द्रहवी शती माना गया है। वामनभट्ट बाण ने हर्षचरित को आदर्श मानते हुए उसके अनुरूप ही **'**वेमभूपालचरित**'** की रचना की। यह ग्रन्थ भी सुन्दर पदविन्यास एवं ललित गद्य का उदाहरण है।

विश्वेश्वर पाण्डेय - इनका समय अठारहवीं शती का पूर्वार्ध माना गया है**?** ये अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि थे तथा व्याकरण**,** दर्शन साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने विविध विषयों से सम्बन्धित लगभग **20** ग्रन्थों का प्रणयन किया। **'**मन्दारमञ्जरी**'** इनकी उत्कृष्ट गद्य रचना है जिस पर कादम्बरी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भाषा सरस एवं ललित है। कादम्बरी का कथा के समान मुख्य कथा में अनेक उपकथाओं का नियोजन किया गया है। ग्रन्थ में कवि का दर्शन व्याकरण एवं साहित्यपरक पाण्डित्य स्पष्ट दिखाई देता है।

अम्बिकादत्त व्यास - सुबन्धु, बाण एवं दण्डी के पश्चात् गद्य काव्य की परम्परा में सर्वाधिक ख्यातनाम है पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का। **'शिवराज विजय'** इनका ऐतिहासिक गद्यकाव्य है इसे संस्कृत का प्रथम उपन्यास कहा जा सकता है। इनका समय उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध माना गया है। यह सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल था। उस समय निरन्तर उद्वेलित हो रहे भारतीय जनमानस का स्पष्ट प्रभाव शिवराज विजय में परिलक्षित होता है।

अम्बिकादत्त व्यास ने **'**गद्य काव्य मीमांसा**'** नामक शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की तथा गद्य के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया तथा गद्य भेदों का भी विशद विवेचन किया। जिसमें उपन्यास को भी गद्य काव्य का विशिष्ट भेद स्थापित करके उसके स्वरूप का विस्तृत निरूपण किया।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1. **गद्य –** अपादः गद्य सन्तानो **–** बिना चरण अथवा पाद का रचना गद्य कहलाती है।
2. **आख्यायिका -** आख्यायिका 'संस्कृत' भाषा में निबद्ध होती है। आख्यायिका का गद्य क्लिष्ट न हो, शब्द सुश्रव्य हो, अर्थ भी स्पष्ट हो, समास भी क्लिष्ट न हो। आख्यायिका का विषय उदात्त होना चाहिए। इसका विभाजन उच्छवासों में विभक्त होना चाहिए।
3. **कथा -** कथा की भाषा संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश हो सकती है जबकि आख्यायिका की भाषा संस्कृत होती है। कथा उच्छवासों में विभक्त नहीं होती।
4. **पाञ्चाली रीति -** शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते शब्द एवं अर्थ का समान गुम्फन पांचाली रिति कहलाता है।
5. **काम -** कामस्तु विषयासक्तचेतसोः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयसुखस्पर्शविशेषः। काम से आशय विषयासक्त चित्त वाले स्त्री एवं पुरुष के स्पर्श जनित निरतिशय सुख है।
6. **गद्य त्रयी –** गद्य के तीन सम्राट सुबन्धु बाण एवं दण्डी को सयुँक्त रूप से गद्य त्रयी कहा जाता है।
7. **पदलालित्य –** पद का ललित होना अर्थात् पदों की सुन्दर रचना को पदलालित्य कहा जाता है।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गद्य किसे कहते है **?**
2. कथा एवं आख्यायिका में क्या अन्तर है **?**
3. वाणी बाणो बभूव ह **?** इस पंक्ति की व्याख्या किजिए
4. संस्कृत गद्य के विकास पर एक लेख लिखिए **?**
5. संस्कृत गद्य का उद्भव किस प्रकार हुआ **?** स्पष्ट किजिए **?**

1.9 सारांश

इस प्रकार सारांश रूप हम कह सकते है कि सस्कृत की रचनाएँ समस्त गद्य विधा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं–

(1) वस्तुतः गद्य कवी का लक्ष्य सुसंस्कृत श्रोताओं का मनोरंजन होता है। यही कारण है कि काव्यों की तरह ही यहाँ उदात्त अलंकृत आहार्य दिखायी पड़ता है और उसी की तरह कथावस्तु का गौण बनाकर वर्णनों को प्रधानता दे दी जाती है।

(2) काव्योपयुक्त लम्बे-लम्बे समास, श्लेष-वैचित्य, अनुप्रास और अर्थालंकार प्राचुर्य कि ओर गद्य कवि विशेष ध्यान देता देखा जाता है।

(3) वह ब्राम्ह्य प्रकृति तथा अन्त: प्रकृति के वर्णन करने की ओर अधिक ध्यान देता है।

(4) कव्योपयुक्त वातावारण की सृष्टि के ही लिए इन कवियों ने प्राय: प्रणय- गाथा को चुना है। पर ध्यान देने की बात यह है कि प्रणय-कथा के कथांश पर गद्य कवि इतना ध्यान देता दिखायी नहीं देता, जितना वर्णन शैली पर।

(5) इन तीनों गद्यकाव्योंकारों के पास अपार शब्द-भण्डार अलंकारों तथा कल्पनाओं की अपूर्व सूझ, वर्णन की तीव्र पर्यवेक्षण-शक्ति, संगीतात्मक भाषा, भाव-पक्ष की तरलता, शाब्दि क्रीडा और यथार्थ जीवन को ज्यों का त्यों चित्रित करने की शक्ति है।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 2004.
2. शर्मा, रामविलास, संस्कृत साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली 1998.
3. मिश्र, रामचन्द्र, संस्कृत साहित्येतिहासः, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2010.
4. Keith A.B., History of Sanskrit Litrature (6th Edition), Motilal Banarsidass Pvt. Ltd., New Delhi, 2014.